'संजद' पदके सम्बन्धमें अकलङ्कदेवका महत्त्वपूर्ण अभिमत

'संजद' पदका विवाद

षट्खण्डागमके ९३वें सूत्रमें 'संजद' पद होना चाहिये या नहीं, इस विषयमें काफी समयसे चर्चा चल रही है। कुछ विद्वानोंका मत है कि 'यहाँ द्रव्यस्त्रीका प्रकरण है और ग्रन्थके पूर्वापर सम्बन्धको लेकर बराबर विचार किया जाता है तो उसकी ('संजद' पदकी) यहाँ स्थिति नहीं ठहरती।' अतः षट्खण्डागमके ९३वें सूत्रमें 'संजद' पद नहीं होना चाहिये। इसके विपरीत दूसरे कुछ विद्वानोंका कहना है कि यहां (सूत्रमें) सामान्यस्त्रीका ग्रहण है और ग्रन्थके पूर्वापर सन्दर्भ तथा वीरसेनस्वामीकी टीकाका सूक्ष्म समीक्षण किया जाता है तो उक्त सूत्रमें 'संजद' पदकी स्थिति आवश्यक प्रतीत होती है। अतः यहां भाववेदकी अपेक्षासे 'संजद' पदका ग्रहण समझना चाहिये। प्रथम पक्षके समर्थक पं० मक्खनलालजी मोरेना, पं० रामप्रसादजी शास्त्री बम्बई, श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंहजी और पं० तनसुखलालजी काला आदि विद्वान् हैं। दूसरे पक्षके समर्थक पं० बंशीधरजी इन्दौर, पं० खूबचन्दजी शास्त्री बम्बई, पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री बनारस, पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री बनारस और पं० पन्नालालजी सोनी ब्यावर आदि विद्वान् हैं। ये सभी विद्वान् जैन-समाजके प्रतिनिधि विद्वान् हैं। अतएव उक्त पदके निर्णयार्थ अभी हालमें बम्बई पंचायतकी ओरसे इन विद्वानोंको निमंत्रित किया गया था। परन्तु अभी तक कोई एक निर्णयात्मक नतीजा सामने नहीं आया। दोनों ही पक्षके विद्वान् युक्तिबल, ग्रन्थसन्दर्भ और वीरसेनस्वामीकी टीकाको ही अपने अपने पक्षके समर्थनार्थ प्रस्तुत करते हैं।

पर जहाँ तक मुझे मालूम है षट्खण्डागमके इस प्रकरण-सम्बन्धी सूत्रोंके भावको बतलाने वाला वीरसेनस्वामीसे पूर्ववर्ती कोई शास्त्रीय प्रमाणोल्लेख किसीकी ओरसे प्रस्तुत नहीं किया गया है। यदि वीरसेनस्वामीसे पहले षट्खण्डागमके इस प्रकरण-सम्बन्धी सूत्रोंका स्पष्ट अर्थ बतलानेवाला कोई शास्त्रीय प्रमाणोल्लेख मिल जाता है तो उक्त सूत्रमें 'संजद' पदकी स्थिति या अस्थितिका पता चल जावेगा और फिर विद्वानोंके सामने एक निर्णय आ जाएगा।

अकलंकदेवका अभिमत

अकलङ्कदेवका तत्त्वार्थवार्तिक वस्तुतः एक महान् सद्रत्नाकर है। जैनदर्शन और जैनागम विषयका बहुविध और प्रामाणिक अभ्यास करनेके लिये केवल उसीका अध्ययन पर्याप्त है। अभी मैं एक विशेष प्रश्नका उत्तर ढूंढनेके लिए उसे देख रहा था। देखते हुए मुझे वहाँ 'संजद' पदके सम्बन्धमें बहुत ही स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण खुलासा मिला है। अकलङ्कदेवने षट्खण्डागमके इस प्रकरण-सम्बन्धी समग्र सूत्रोंका वहाँ प्रायः अविकल अनुवाद दिया है। इसे देख लेनेपर किसी भी पाठकको षट्खण्डागमके इस प्रकरणके सूत्रोंके अर्थमें जरा भी सन्देह नहीं रह सकता। यह सर्वविदित है कि अकलङ्कदेव वीरसेन स्वामीसे पूर्ववर्ती हैं और उन्होंने अपनी धवला तथा जयधवला दोनों टीकाओंमें अकलङ्कदेवके तत्त्वार्थवार्त्तिकके प्रमाणोल्लेखोंसे अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णित विषयोंको कई जगह प्रमाणित किया है। अतः तत्त्वार्थवार्तिकमें षट्खण्डागमके इस प्रकरण-संबन्धी सूत्रोंका जो खुलासा किया गया है वह सर्वके द्वारा मान्य होगा ही।

तत्त्वार्थवार्तिकके उद्धरण

मनुष्यगतौ मनुष्येषु पर्याप्तकेषु चतुर्दशापि गुणस्थानानि भवन्ति, अपर्याप्तकेषु त्रीणि मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयाख्यानि। मानुषीपर्याप्तिकासु चतुर्दशापि गुणस्थानानि सन्ति भावलिङ्गापेक्षया, द्रव्यलिङ्गापेक्षेण तु पंचाद्यानि। अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये, सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजननाभावात्।'—तत्त्वार्थवार्तिक, पृ० ३३१, अ० ९, सू० ७।

इसे षट्खण्डागमके निम्न सूत्रोंके साथ पढ़ें—

षट्खण्डागमके सूत्र

मणुस्सा मिच्छाइट्ठि–सासणसम्माइट्ठि असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८९ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठि–संजदासजद–संजद–ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥९०॥

एवं मणूस्स-पज्जत्ता ॥९१॥

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि–ट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥९२॥

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जतियाओ ॥९३॥

षट्खण्डागम और तत्त्वार्थवार्तिकके इन दोनों उद्धरणोंपरसे पाठक यह सहजमें समझ जावेंगे कि तत्त्वार्थवार्तिकमें षट्खण्डागमका ही भावानुवाद दिया हुआ है और सूत्रोंमें जहाँ कुछ भ्रान्ति हो सकती थी उसे दूर करते हुए सूत्रोंके हार्दका सुस्पष्ट शब्दों द्वारा खुलासा कर दिया गया है। राजवार्तिकके उपर्युक्त उल्लेखमें यह स्पष्टतया बतला दिया गया है कि **पर्याप्त मनुष्यणियोंके १४ गुणस्थान होते हैं किन्तु वे भावलिंगकी अपेक्षासे हैं, द्रव्यलिङ्गकी अपेक्षासे तो उनके आदिके पाँच ही गुणस्थान होते हैं।** इससे प्रकट है कि वीरसेनस्वामीने जो भावस्त्रीकी अपेक्षा १४ गुणस्थान और द्रव्यस्त्रीकी अपेक्षा ५ गुणस्थान षट्खण्डागमके ९३ वें सूत्रकी टीकामें व्याख्यात किये हैं और जिन्हें ऊपर अकलंकदेवने भी बतलाये हैं वह बहुत प्राचीन मान्यता है और वह सूत्रकारके लिये भी इष्ट है। अतएव सूत्र ९२ वें में उन्होंने अपर्याप्त स्त्रियोंमें सिर्फ दो ही गुणस्थानोंका प्रतिपादन किया है और जिसका उपपादन '**अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये, सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजननाभावात्**' कहकर अकलङ्कदेवने किया है। अकलङ्कदेवके इस स्फुट प्रकाशमें सूत्र ८९ और ९२ से महत्वपूर्ण तीन निष्कर्ष और निकलते हुए हम देखते हैं। एक तो यह कि **सम्यग्दृष्टि स्त्रियोंमें पैदा नहीं होता।** अतएव अपर्याप्त अवस्थामें स्त्रियोंके प्रथमके दो ही गुणस्थान कहे गये हैं जब कि पुरुषोंमें इन दो गुणस्थानोंके अलावा चौथा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान भी बतलाया गया है और इस तरह उनके पहला, दूसरा और चौथा ये तीन गुणस्थान कहे गये हैं। इसी प्राचीन मान्यताका अनुसरण और समर्थन स्वामी समन्तभद्रने रत्नकरण्डश्रावकाचार (श्लोक ३५) में किया है। इससे प्रकट है कि यह मान्यता कुन्दकुन्द या स्वामी समन्तभद्र आदि द्वारा पीछेसे नहीं गढ़ी गई है। अपितु उक्त सूत्रकालके पूर्वसे ही चली आ रही है।

दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि अपर्याप्त अवस्थामें स्त्रियोंके आदिके दो गुणस्थान और पुरुषोंके पहला, दूसरा और चौथा ये तीन गुणस्थान ही संभव होते हैं और इसलिये इन गुणस्थानोंको छोड़कर **अपर्याप्त**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवस्थामें भाववेद या भावलिङ्ग नहीं होता, जिससे पर्याप्त मनुष्यनियोंकी तरह अपर्याप्त मनुष्यनियोंके १४ गुणस्थान भी कहे जाते और इस लिये वहां भाववेद या भावलिङ्गकी विवक्षा-अविवक्षाका प्रश्न नहीं उठता। हां, पर्याप्त अवस्थामें सभी गुणस्थानोंमें भाववेद होता है, इसलिये उनकी विवक्षा-अविवक्षाका प्रश्न जरूर उठता है। अतः वहाँ भावलिंगकी विवक्षासे १४ और द्रव्यलिंगकी अपेक्षासे प्रथमके पाँच ही गुणस्थान बतलाये गये हैं। इन दो निष्कर्षोंपरसे स्त्रीमुक्ति-निषेधकी मान्यतापर भी महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है और यह मालूम हो जाता है कि स्त्रीमुक्ति-निषेधकी मान्यता कुन्दकुन्दकी अपनी चीज नहीं है किन्तु वह भ० महावीरकी ही परम्पराकी चीज है और जो उन्हें उक्त सूत्रों—भूतबलि और पुष्पदन्तके प्रवचनोंके पूर्वसे चली आती हुई प्राप्त हुई है।

तीसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि **यहाँ सामान्य मनुष्यणीका ग्रहण है—द्रव्यमनुष्यणी या द्रव्यस्त्री-का नहीं**, क्योंकि अकलङ्कदेव भी पर्याप्त मनुष्यनियोंके १४ गुणस्थानोंका उपपादन भावलिंगकी अपेक्षासे करते हैं और द्रव्यलिंगकी अपेक्षासे पाँच ही गुणस्थान बतलाते हैं। यदि सूत्रमें द्रव्यमनुष्यनी या द्रव्यस्त्री-मात्रका ग्रहण होता तो वे सिर्फ पाँच ही गुणस्थानोंका उपपादन करते, भावलिंगकी अपेक्षासे १४ का नहीं। इसलिये जिन विद्वानोंका यह कहना है कि 'सूत्र' में पर्याप्त शब्द पड़ा है वह अच्छी तरह सिद्ध करता है कि द्रव्यस्त्रीका यहाँ ग्रहण है क्यों कि पर्याप्तियाँ सब पुद्गल द्रव्य ही हैं'....'पर्याप्तस्त्रीका ही द्रव्यस्त्री अर्थ है'[1] वह संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अकलंकदेवके विवेचनसे प्रकट है कि यहाँ 'पर्याप्तस्त्री' का अर्थ द्रव्य-स्त्री नहीं है और न द्रव्यस्त्रीका प्रकरण है किन्तु सामान्यस्त्री उसका अर्थ है और उसीका प्रकरण है और भावलिंगकी अपेक्षा उनके १४ गुणस्थान हैं। दूसरे, यद्यपि पर्याप्तियाँ पुद्गल हैं लेकिन पर्याप्तकर्म तो जीव-विपाकी है, जिसके उदय होनेपर ही 'पर्याप्तक' कहा जाता है। अतः 'पर्याप्त' शब्दका अर्थ केवल द्रव्य नहीं है—भाव भी है।

निष्कर्ष :

अतः तत्त्वार्थवार्त्तिकके इस उल्लेखसे स्पष्ट है कि षट्खंडागमके ९३ सूत्रमें 'संजद' पद आवश्यक एवं अनिवार्य है। यदि 'संजद' पद सूत्रमें न हो तो पर्याप्त मनुष्यनियोंमें १४ गुणस्थानोंका अकलंकदेव-का उक्त प्रतिपादन सर्वथा असंगत ठहरता है और जो उन्होंने भावलिंगकी कपेक्षा उसकी उपपत्ति बैठाई है तथा द्रव्यलिंगकी अपेक्षा ५ गुणस्थान ही वर्णित किये हैं वह सब अनावश्यक और अयुक्त ठहरता। अतएव अकलङ्कदेव उक्त सूत्रमें 'संजद' पदका होना मानते हैं और उसका सयुक्तिक समर्थन करते हैं। वीरसेनस्वामी भी अकलंकदेवके द्वारा प्रदर्शित इसी मार्ग पर चले हैं। अतः यह निर्विवाद है कि उक्त सूत्रमें 'संजद' पद है। और इसलिये ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण सूत्रोंमें भी इस पदको रखना चाहिये तथा भ्रान्तिनिवारण एवं स्पष्टीकरणके लिये उक्त सूत्र ९३ के फुटनोटमें तत्त्वार्थराजवार्त्तिकका उपर्युक्त उद्धरण दे देना चाहिये।

हमारा उन विद्वानोंसे, जो उक्त सूत्रमें 'संजद' पदकी अस्थिति बतलाते हैं, नम्र अनुरोध है कि **वे तत्त्वार्थवार्त्तिकके इस दिनकर-प्रकाशकी तरह स्फुट प्रमाणोल्लेखके प्रकाशमें उस पदको देखें**। यदि उन्होंने ऐसा किया तो मुझे आशा है कि वे भी भावलिंगकी अपेक्षा उक्त सूत्रमें 'संजद' पदका होना मान लेंगे। श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजसे भी प्रार्थना है कि वे ताम्रपत्रमें उक्त सूत्रमें 'संजद' पद अवश्य रखें—उसे हटायें नहीं। ●

---

१. पं० रामप्रसादजी शास्त्रीके विभिन्न लेख और 'दि० जैनसिद्धान्तदर्पण' द्वितीयभाग, पृ० ८ और पृ० ४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org